तँवरघारी – हिन्दी
शब्दकोश

– डॉ. रामस्वरूप उपाध्याय 'सरस'

तँवरधारी-हिन्दी
शब्द कोश

डॉ. रामस्वरूप उपाध्याय `सरस'

प्रधान सम्पादक
श्रीराम तिवारी

सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स, भोपाल–462002
मध्यप्रदेश, भारत
फोन – 0755–2661948, 2661640
E-mail : mplokkala@rediffmail.com

प्रकाशन वर्ष – वर्ष 2012 प्रथम संस्करण

स्वत्वाधिकार – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

शब्दांकन – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

आवरण –

मुद्रण – शासकीय केन्द्रीय मुद्रणालय, भोपाल

मूल्य – 300/– रुपये (तीन सौ केवल

■ पुस्तक से सम्बन्धित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्य क्षेत्र भोपाल होगा।
■ पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री लेखक की है, आवश्यक नहीं कि प्रकाशक इससे सहमत हो।

ISBN 978-81-922558-0-4

माँ
श्रीमती सुखदेवी जी
के श्री चरणों
में
सश्रद्ध समर्पित।

– डॉ. रामस्वरूप उपाध्याय 'सरस'

बोलियाँ जनपदों के लोक जीवन में सम्प्रेषण और वाचिक रचना का आधार हैं। संस्कृति रचना और उसकी विशिष्टता के केन्द्र में मूलत: भाषाएँ होती हैं। बुन्देली, बघेली, निमाड़ी, मालवी तंवरघारी, भदावरी, सिकरवारी आदि केवल बोलियाँ नहीं हैं, वे समृद्ध संस्कृतियाँ भी हैं।

जीवन की सुदीर्घ लोकयात्रा में विपुल शब्द सम्पदा का निर्माण होता है-भाषाओं की तुलना में अपनी जीवन्तता और त्वरा, अनुभव और अभिव्यक्ति में बोली अधिक नमनीय, लचीली, शब्द बहुल और सटीक होती है, क्योंकि उसके पीछे समूह चित्त और सामुदायिक परम्पराएँ सक्रिय होती हैं। लोक वास्तव में व्यवहार और आचरण में होता है- जीवन की व्यापक गतिविधि और कर्म के बीच अनुभव की ज्ञान परम्परा से बोलियों का दायरा विस्तृत होता है, सहज और प्रामाणिक, अनायास और प्रयत्नहीन कितने-कितने शब्द इस भाषिक सम्पदा में शामिल हो जाते हैं। वे लोगों के व्यवहार और सम्प्रेषण, रचना और अभिव्यक्तियों में अपने को प्रकट करते हैं, वे शब्द केन्द्रित रचना परम्पराओं से होते हुए हजारों कौशलों और सांस्कृतिक परम्पराओं, अनुष्ठानों और पवित्र देवधारणाओं तक फैल जाते हैं। मनुष्य की सांस्कृतिक धरोहरों में यह एक अनूठी विरासत है- इस शब्द सृष्टि का बड़ा मूल्य है। भाषाएँ जब-जब इन वाचिकताओं के निकट आती हैं-अन्तर्क्रिया करती हैं, उनकी शक्ति का संसार विस्तारित हो जाता है, वे अधिक जीवन्त और अर्थबहुल हो जाती हैं। उन्हें सम्प्रेषण और अभिव्यक्ति की नई व्यंजनाएँ और भंगिमाएँ मिल जाती हैं।

विभिन्न जनपदों में बोलियाँ लोक सम्प्रेषण और रचना का माध्यम ही नहीं है, वे वास्तव में एक सुदीर्घ और समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा का आधार भी होती हैं। हम कह सकते हैं कि अपने आद्य रूप में भाषा ही तत्त्वत: संस्कृति रचना और बोध के केन्द्र में होती है। लोक समाजों में सम्प्रेषण वाचिक है, और साहित्यक रचना भी मौलिक परम्परा का एक भाग होती है-इस रूप में 'वाचिकता' वास्तव में लोक संज्ञान के प्रत्येक पक्ष और सर्जना के सभी माध्यमों में संभव होती है।

बोली और वाचिकता का संबंध एक दूसरे से जुड़ा है। वाचिक सम्प्रेषण में एक अद्‌भुत त्वरा और शक्ति होती है– भाषाओं की तुलना में बोलियाँ अधिक शब्द बहुल और अर्थान्विति को प्रकट करतीं हैं। यह जीवन की व्यवहार परम्परा और उसका अनुभव केन्द्रित ज्ञान है, जो प्रत्येक स्थिति, घटना, भाव, विचार और अनुभूति को तुरन्त एक विलक्षण अमिधा देता है।

कृषि और दस्तकारी के विभिन्न कौशलों के देशज ज्ञान प्रणालियों में से प्रत्येक अनुशासन की अपनी एक विशिष्ट पारम्परिक शब्दावली होती है। खेती, कुम्हारी, बुनकरी, रंगरेजी, लोहरी और काष्ठगीरी के पास अपने माध्यमों की खास भाषा होती है– यह लोक सम्प्रेषण की भाषा से इतर है और बोलियों के शब्दों के संसार को विस्तृत कर देती है। जब हम लोक की व्यवहार परम्परा और अनुभव केन्द्रित ज्ञान की बात करते हैं, जिसके साथ वाचिक रूपों और शब्द सम्पदा का गहरा संबंध है, तब हमारा आशय यही होता है।

जनपदों में –एक भाषा के जनपद में बीस –तीस मील के अंतर से भाषा थोड़ा बदल जाती है, उसके शब्द, शब्दोच्चार और अर्थ भंगिमा में थोड़ा अंतर आ जाता है। कुछ नये शब्द और विलक्षण अर्थ उसमें शामिल हो जाते हैं। जब हम बोलियों के सम्यक् शब्दकोश बनाते हैं, तो यह कठिनाई बढ़ती जाती है– एक क्षेत्र में जो विशेष शब्द है, दूसरे क्षेत्र में उसमें थोड़ा अंतर आ जाता है, उच्चारण के ढंग में भी थोड़ा परिवर्तन होता है। इसलिए यह दावा करना कठिन है कि किसी भी बोली का समग्र शब्दकोश बनाया जा सकता है– वास्तव में इस क्षेत्र में शब्द संकलन और उनके प्रकाशन की पहल ही की जा सकती है। यह एक सतत् प्रक्रिया के रूप में संभव है, जब प्रतिवर्ष इन संकलनों में नयी शब्द सम्पदा शामिल हो और यही एक जीवन्त भाषा –कोश की जरूरत है।

'निमाड़ी', 'बघेली''मालवी''बुन्देली' शब्दकोश के प्रकाशन के बाद 'तंवरघारी' भाषा पर एकाग्र यह पाँचवा शब्दकोश है। यह सारा कार्य बोलियों की शब्द सम्पदा के संकलन का आरंभ ही है– धीरे–धीरे यह कार्य अधिक विस्तृत और गहन भी होगा। उम्मीद है इस प्रयास पर आपकी प्रतिक्रिया हमें प्राप्त होगी।

–प्रकाशक

उपोद्घात

मध्यप्रदेश के ठीक उत्तरी शीर्ष पर तँवरघार अंचल स्थित है। यदि भारत वर्ष का मस्तिष्क जम्मू कश्मीर है, तो मध्य प्रदेश का भाल तँवरघार है। तँवरघार में मध्यप्रदेश के मुरैना, भिण्ड जिले और राजस्थान, उत्तर प्रदेश प्रान्त के वे गाँव आते हैं, जो चम्बल नदी के तट पर बसे हुए हैं।

दिल्ली पर अेमेर के चौहानों का अधिकार हो जाने के बाद दिल्ली के अन्तिम तोमर नरेश महाराज अनंगपाल के पुत्र नये राज्य क्षेत्रों की तलाश में इधर-उधर जाकर बसने लगे। अनंगपाल के कनिष्ठ पुत्र तँवरपाल ने सन् 1200 ई. के आस-पास मध्यप्रदेश और राजस्थान प्रान्तों की सीमा पर चम्बल नदी के किनारे अपने नाम के द्वारा तँवरघार नामक राज्य की स्थापना की। यह स्थान मुरैना नगर से पच्चीस किलोमीटर दूर ऐसाह ग्राम नाम से आज भी प्रसिद्ध है, जहाँ एक दुर्ग के भग्नावशेष आज भी विद्यमान हैं।

हिन्दी विधान के द्वारा उत्तरी मध्यप्रदेश की लोक भाषा तँवरघारी है। इस तँवरघारी में विविध भाषाओं का सम्मिश्रण है, जिनमें मुख्यतः सिकरवारी, भदावरी, बुंदेलखण्ड़ी, ब्रजभाषा व फारसी के अनेकानेक शब्द यहाँ की वाचिक परम्परा में घुले-मिले हैं। नगरों से दूर गाँवों में ठेठ गँवारू शब्द बोले जाते हैं, जिनका किसी पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

तँवरघार के अन्तर्गत चर्मण्वती के गहरे भरकों में मेरा जन्म हुआ है। यहाँ की रज ने मेरा अभिषेक किया है, तो माटी की सौंधी गंध ने मेरे अन्तरमन को स्पर्श किया है। मुझे अपने उन वृद्ध दादा, काका की वह बातें आज भी स्मरण हैं, जब वे संध्या काल से अुहो या आंथहो तथा सुबह से सकारो कहते थे। उस काल परम्परा से जुड़े शब्दों की एक महक थी और उस महक में रिश्ते-नातों की एक गंध भी हुआ करती थी। आज यहाँ से वे प्राकृत शब्द निरन्तर अदृश्य होते जा रहे हैं, तथा संपूर्ण भाषाई-परिदृश्य ही चितकबरा और धुँधलाता जा रहा है। पहले यहाँ आजी, अरारो, अस्सेटो, अगानो व अरैया ऐसे शब्द थे, जिनसे अंचल की भीनी सुगन्ध उठती थी, परन्तु आज वे सब विलुप्त होते जा रहे हैं।

हमें भाषा से गायब होती जिन्दगी को बचाना है, हमें उन शब्दों को भी बचाना है, जिनसे संस्कृति की सही सिनाकत होती रहे। इस लोक संस्कृति और लोक परंपरा का संरक्षण तभी हो सकता है, जब हमारे अपने

शब्द बचे रहेंगे। इस तँवरघारी–हिन्दी शब्दकोश का संग्रह भी मैंने इसी दृष्टिकोण से किया है। बचपन से ही मन में यह प्रश्न हमेशा कोंधता रहा कि अपनी संस्कृति को बचाना ही हमारा परम ध्येय है। आज इस ग्रन्थ के माध्यम से यह सपना पूरा हुआ जाता है।

लगभग दस–बारह वर्ष पूर्व से मैंने तँवरघारी हिन्दी शब्दकोश तैयार करने का उपक्रम हाथ में लिया था, और तभी से यहाँ के प्राचीन व प्राकृत शब्दों को संकलित करता चला आ रहा हूँ। अंचल की शब्द सम्पदा असीम है, विविधवर्णी है– परन्तु इस ग्रन्थ में लगभग बीस हजार शब्द ही एकत्रित हो पाए हैं, जो आज भी सभी की जुबान से बड़े प्रेम से बोले जाते हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये मैं आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, भोपाल के सुधी निदेशक श्रीराम तिवारी और लोक साहित्य के मर्मज्ञ भैया अशोक मिश्र का हृदय से अति आभारी व कृतज्ञ हूँ, जिनकी अहेतुकी कृपा से ही इस तँवरघारी हिन्दीशब्द कोश का प्रकाशन संभव हो पा रहा है।

श्री कमल कान्त सक्सेना (भोपाल), भाई डम्बर सिंह तोमर, डॉ. राम अवतार सिंह चौहान, डॉ. सुधीर आचार्य, डॉ. सन्दीप शर्मा और श्रीमती डॉ. निशा जैन के अतिशय सम्बल ने मेरे उत्साह को बढ़ाया है, तथा परिवारीजनों ने काफी समय देकर इस कार्य में मेरे लिये सारी सुविधाएँ जुटायी हैं। मैं सभी का हृदय से ऋणी हूँ।

अम्बाह
जनवरी 2012

– रामस्वरूप उपाध्याय 'सरस'

संकेत–सूची

अ.	–	अव्यय
अ.क्रि.	–	अकर्मक क्रिया
उप.	–	उपसर्ग
ए.व.	–	एकवचन
क्रि.वि.	–	क्रिया विशेषण
च.मा.	–	चम्बल माटी (महाकाव्य) – डॉ. रामस्वरूप उपाध्याय 'सरस'
पु.	–	पुल्लिंग
प्र.	–	प्रत्यय
फा.	–	फारसी
ब.व.	–	बहुवचन
बुं.	–	बुंदेलखंडी
भ.	–	भदावरी
मु.	–	मुहावरा
वि.	–	विशेषण
ब्र.	–	ब्रजभाषा
सं.	–	संज्ञा
स.क्रि.	–	सकर्मक क्रिया
सर्व.	–	सर्वनाम
सि.	–	सिकरवारी
स्त्री.	–	स्त्रीलिंग